क्या धार्मिक शिक्षा उपयोगी है ?

□ साध्वी श्री रमाकुमारी
(युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी की शिष्या)

आज अगर हम अन्तस्तल की गहराई में उतरकर देखें तो पायेंगे कि हमारा शैक्षणिक स्तर ही बदल गया। हमारी मान्यताएँ बदल गईं, हमारी धारणाएँ बदल गईं, हमारे सोचने-समझने का ढंग ही पूर्णतः बदल गया है। विज्ञान ने हमारी आध्यात्मिक आस्था ही छीन ली है। ऐसे जटिलतावादी युग में व्यक्ति आस्थाहीन व मूल्यहीन बनता जा रहा है। यह परिस्थिति छात्र जीवन के लिए दुःखद, भयावह व निराशाजन्य प्रतीत हो रही है। जहाँ देखें वहीं कुहरा ही कुहरा दृष्टिगत हो रहा है। ऐसे अन्धकारग्रसित युग में छात्र अपने जीवन का भविष्य निर्धारण करने में सर्वथा निरुपाय प्रतीत होता है। उसे अपने जीवन रथ का धुरी को कैसे प्रवर्तन करना चाहिए और किस दिशा में नियोजित करना चाहिए इस तथ्य से वह पूर्णतः अनभिज्ञ है। समुज्ज्वल भविष्य के क्षणों के दर्शन में भी वह अपने आप को असमर्थ समझ रहा है। इसीलिए ही तो आधुनिक शिक्षा-प्रणाली से छात्रों का जीवन व्यवहार उच्छृंखल व अनुशासनहीन-सा बनता जा रहा है। प्रश्न है---ऐसा क्यों हो रहा है ? इसका मुख्य कारण है— जीवन में धार्मिक शिक्षा का अभाव। चिन्तन के दर्पण में अवलोकन करें तो प्रतिबिम्ब धूमिल-सा नजर आता है। आत्मा का जो पवित्र विशुद्ध रूप है वह हमारे समक्ष प्रस्तुत नहीं हो पाता। अगर जीवन व्यवहार में धार्मिकता का समावेश हो जाये तो निःसन्देह विद्यार्थी जीवन के रंग-मंच में आमूल-चूल परिवर्तन की स्वर्णिम आभा प्रस्फुटित हो जाए। जीवन का वह सुनहरा प्रभात नये उल्लास से भर जाये। प्रामाणिक नैतिक जीवन ही समुज्ज्वल भविष्य की रीढ़ है।

अतः प्रत्येक विद्यार्थी को अपने जीवन को प्रकाशमय बनाने की उत्कट इच्छा हो तो उसे चाहिए कि वह इस श्लोक के प्रत्येक चरण का अपने जीवन के बहुमूल्य क्षणों के साथ तादात्म्य संस्थापित करे—

विनयः शासने मूलं, विनीतः संयतो भवेत्।
विनयाद् विप्रमुक्तस्य, कुतो धर्मः कुतो जयः ॥१॥

विद्यार्थी विनय की परम्परा को कैसे नजर-अन्दाज कर देता है, कुछ समझ में नहीं आता है। आप पढ़ेंगे एक दासी के पुत्र का जीवन वृत्त। जिसने विनय के प्रभाव से ही बहुत कुछ ज्ञान अर्जित किया था। वह कथा प्रसग इस प्रकार है—

जाबाल नामक एक दासी थी। उसकी कुक्षि से एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम था सत्यकाम। उसके मन में अध्ययन करने की तीव्र उत्कण्ठा थी। पर वह निर्धन था। बिना फीस कौन पढ़ाए ! पूर्वजन्मगत धार्मिक विचारों की उस पर बहुत सुन्दर प्रतिक्रिया थी। जैसे ही वह शैशव की दहलीज को पार करता है उसके मन में धर्म-शास्त्र के अध्ययन की एक तड़प जागती है। वह इन्हीं विचारों की उधेड़-बुन में डुबकियाँ लगाने लगता है। एक दिन उसने अपने मन में दृढ़ निश्चय किया और शुभ मुहूर्त देखकर सत्यकाम महर्षि गौतम की सन्निधि में उपस्थित हुआ। विनयपूर्वक प्रणाम कर अपनी हृदयगत भावना को अभिव्यक्त कर प्रशान्त मुद्रा में बैठ गया। महर्षि गौतम ने पूछा— तुमकौन हो ? तुम्हारा गोत्र क्या है ? सत्यकाम ने प्रत्युत्तर में कहा— प्रभो ! मेरा नाम सत्यकाम है। मैं अपने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोत्र के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता। अज्ञात परिवार के परिवेश से गुजर रहा हूँ। मैं अपने गोत्र के परिचय के सम्बन्ध में पूर्णतः अनभिज्ञ हूँ। महर्षि गौतम के स्मित हास्य बिखेरते हुए कहा—जाओ, अपनी माँ से पूछकर आओ। सत्यकाम चिन्ता की गहनाब्धि में डूबने लगा। पैर लड़खड़ाने लगे। वह निराशा भरे स्वर में बोला—माँ ! बताओ अपना गोत्र क्या है ? माँ पुत्र की वाणी सुनकर निस्तब्ध हो गई। आखिर बताए भी क्या, कोई एक पति हो तो बताए। वरना क्या बताए ? वह भी असंमजन में पड़ गई। बेटा, तुम्हें अगर कोई भी पूछे तो उससे स्पष्ट कहो—मेरा नाम सत्यकाम जाबाल है। उसने घर से सानन्द विदा ली और महर्षि गौतम के उपपात में उपस्थित हुआ। अपने गोत्र के सम्बन्ध में यथातथ्य कह सुनाया। महर्षि उसकी अन्तस्तल की सरलता पर आश्चर्यचकित थे। करुणामयी दृष्टि का स्नेह भाजन बनकर सत्यकाम आश्रम में रहने लगा। महर्षि गौतम का हृदय उसकी विनयशीलता पर द्रवीभूत हो गया। उसे ज्ञान का पात्र समझकर 'ब्रह्मज्ञान' का उपदेश दिया। अन्त में वह महर्षि जाबाल नाम से प्रसिद्ध हुआ। सिंहनी का दूध स्वर्णपात्र में ही ठहरता है, अन्य पात्र में नहीं। आत्मज्ञान भी पात्र को ही सम्प्राप्त होता है, अपात्र को नहीं। एक कवि ने यथार्थ का दिग्दर्शन कराते हुए उल्लेख किया है। जैसे—

विना गुरुभ्योः गुणनीरधिभ्योः
जानाति धर्मं न विचक्षणोऽपि।

यथार्थसार्थं गुरुलोचनोऽपि
दीपं विना पश्यति नान्धकारे ॥१॥

मनोवैज्ञानिक स्तर से विश्लेषण करें तो पायेंगे कि गुरु की महिमा अगाध है। वह शिष्य की हृदयगत तरंगित भाव ऊर्मियों को आसानी से परिलक्षित कर लेता है। आधुनिक युग में अनेक वैज्ञानिकों ने यन्त्रों का परि-निर्माण कर विश्व को चकाचौंध कर दिया है, किन्तु आत्मा को जानने का कोई भी यन्त्र नहीं है। अतः श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—"चरेज्जत्त गवेसए"—खुद को जानकर आगे बढ़ो। यूरोप और एशिया को जानने से पूर्व अपने अन्तस्तल को जानो। एक अंग्रेज का भी यही कहना है—(Know thy self) अपने आप को जानो, गहराई में उतर कर जानो। आज का छात्र पानी पर तैरने वाली शैवाल की भाँति पुस्तकों के ऊपरी ज्ञान को ही पकड़ता है। ज्ञान का समुद्र बहुत गहरा है। वहाँ कौन डुबकियाँ लगाए ? अम्बुधि तट पर खड़ा रहने वाला तो सीप-शंख ही पाता है। कीमती मोती कहाँ से पायेगा ? गहराई के अभाव में धर्म के बिना कोई भी अपना हित-चिन्तन नहीं कर सकता। धर्म भारतीय जनता की आत्मा है। धर्म-निरपेक्ष का अर्थ होगा, आत्मा की परिसमाप्ति। अध्यात्मशून्य शक्षणिक व्यवस्था आज के भौतिकवादी गुण में वरदान की अपेक्षा अभिशाप सिद्ध हो रही है क्योंकि भारतीय छात्र अब भी पाश्चात्य शिक्षा संस्कृति से प्रभावित हैं। अतः सभ्यता व व्यावहारिकता के तो उसमें दर्शन ही दुर्लभ हो गये हैं। भगवद्वाणी भारतीय विद्यार्थियों का जीवन ही बदल देती है। अगर वे अपने जीवन का निरीक्षण सत्य व ईमान की भूमिका पर खड़े होकर करें तो वे बहुत ही सुसंस्कृत व सभ्य नागरिक बनने में सक्षम हो सकते हैं। अतः इस आर्ष वाणी को सदैव याद रक्खें—'न असब्भमाहु' असभ्य, अप्रिय तथा क्लेशवर्धक तुच्छ शब्द अपने मुँह से न बोले। यही विद्यार्जन का सही फलित होगा। मनुष्य का उदात्त विचार ही स्वस्थ समाज की परिकल्पना है।

गुरु ने शिष्य से कहा—"नहि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते" अर्थात् संसार में ज्ञान की तुलना में कोई भी वस्तु पवित्र नहीं हो सकती। किन्तु दृष्टि से अगर यथार्थ का प्रतिबिम्ब उतर आये तो सारा अन्धकार स्वतः ही विलीन हो जाये, यह कब होगा जब बुद्धि अयथार्थ के पर्दे से अनावृत हो जायेगी तथा बुद्धि का पवित्रीकरण हो जायेगा तो प्रकाश ही प्रकाश सर्वत्र विकीर्ण होने लगेगा। गुरु ने शिष्य को हस्ती का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहा—हाथी स्नान करने हेतु तालाब में प्रवेश करता है। स्नान करने के पश्चात् ज्योंही वह बाहर आता है। पुनः अपनी ही सूंड से अपने ऊपर मिट्टी डालने लग जाता है। शिष्य ने पूछा—गुरुदेव क्या ! वह मूर्ख है ? जो स्नान की विशुद्धि और पवित्रता को नहीं समझता। गुरु ने कहा—वह अज्ञानी है, उसका विवेक जागृत नहीं है। अज्ञान के कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही वह ऐसा करता है। अतः मनुष्य विवेकशील प्राणी है। उसका विवेक जागृत है, वह जिस वस्तु को हेय समझ लेता है फिर उसे कदापि ग्रहण नहीं करता। यह हेय और उपादेय की जागृति कब होती है, जब उसके पास ज्ञान हो, अध्ययन हो। बस-बस शिष्य समझ गया कि मुझे पढ़ना चाहिये तथा निष्ठापूर्वक विद्याभ्यास करना चाहिए। क्योंकि कहा गया है—"सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जो दुर्गुणों से मुक्ति दिलाए। पर आज के विद्यार्थी दुर्गुणों के दास बन गये हैं, फैशनपरस्ती में वे इतने सराबोर रहते हैं, उन्हें अनुभव ही नहीं होता कि अमूल्य मानव-जन्म को हम कैसे नष्ट कर रहे हैं। माता-पिता व सद्गुरुजनों की शिक्षा का तो लेशमात्र भी उन पर असर नहीं होता क्योंकि मनुष्य का मन इतना दुर्बल है कि सद्गुणों की अपेक्षा दुर्गुणों से अधिक प्रभावित होता है। इस मानसिक अनियन्त्रण से दुराचार की व्याधि प्रतिदिन बढ़ रही है चाहे सरकारी कानून कितने ही क्यों न बनाये जायँ। जब तक अन्तस्तल की जागृति नहीं हो पाती, तब तक दुराचार को सदाचार में परिवर्तित करना असंभव है। विवेक का जागरण बाहर से नहीं, भीतर से होगा। विद्यार्थी अगर भारत के महान् नेता व राष्ट्रपति बनना चाहते हैं तो वे अणुव्रत के माध्यम से अपना निरीक्षण करना सीखें तथा समय की कीमत को आँके। महान् बनने की भावना के सुनहरे स्वप्न जो आप रात को संजोते हैं वे स्वप्न स्वप्न न रहकर साकार होने लगेंगे। एक अंग्रेज ने कहा है—(Time is money) समय बहुत बड़ा धन है। नेपोलियन युद्ध की व्यस्तता में भी जोजेफाइन को पत्र लिखने का समय निकाल ही लेता था। ऐसा कहा जाता है कि आज वे पत्र करोड़ों डालर के हैं। एक दुकानदार के पास एक व्यक्ति पुस्तक खरीदने के लिए आया और पुस्तक का मूल्य पूछा। बेंजामिन फ्रेंकलिन ने कहा—एक डालर। वह चला गया। कुछ क्षण रुककर पुनः आया और पूछा—महाशय ! पुस्तक का मूल्य कुछ कम करोगे ? फ्रेंकलिन ने तपाक से उत्तर दिया—सवा डालर। ग्राहक असमंजस में पड़ गया। पुस्तक वही है इतने में चौथाई डालर कैसे बढ़ गया। उससे रहा नहीं गया। उसने अपनी जिज्ञासा का स्पष्टीकरण चाहा। दुकानदार ने हार्द समझाते हुए कहा—कीमत पुस्तक की नहीं, समय की होती है। आज जो आप विकास की रूपरेखा देख रहे हैं, ये सारे विकास के कार्य समय की उपादेयता से ही सम्पादित हुए हैं। अतः छात्रों को चाहिए कि वे समय का मूल्यांकन करे। महान् कवि, वक्ता व प्रोफेसर बनने की अभीप्सा हो तो समय के पाबन्द बनें तथा साथ ही साथ अपने जीवन को नैतिक, ईमानदार व सदाचारी बनाने का सतत प्रयास करें। जिसका हृदय करुणा व मैत्री से ओत-प्रोत है, वही व्यक्ति समाज, राष्ट्र व परिवार के समक्ष नैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना कर सकता है। जीवन की उज्ज्वल, पवित्र व प्रकाशमयी आभा के परिप्रेक्ष्य में अपने आपको झाँक सकता है। उस छात्र का जीवन धन्य है जिसने समय की प्राणवत्ता को सही माने में समझ लिया है। नैतिक शिक्षा की दृष्टि से अंकन करें तो राणावास की विद्याभूमि अपना गौरवमय इतिहास प्रस्तुत करती है एवं आधुनिक युग में एक नया कीर्तिमान् स्थापित करती है।

□

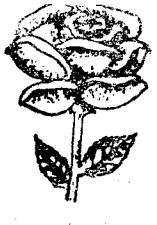

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org